Chapter-7

सप्तम् अध्याय

"मौलिक प्रदान तथा मूल्यांकन"

समग्र मूल्यांकन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यास ने काफी प्रौढता हासिल की है। हिन्दी उपन्यास के सामने नव-यथार्थ का एक ऐसा परिदृश्य उपस्थित हुआ, जिसमें उसके बहुमुखी विचरण की अनन्त विविधताएँ हैं। उपन्यास अपने समय का साक्षी तो होता ही है, साथ ही वह समय के साथ यात्रा भी करता है। इस शोध कार्य में हिन्दी उपन्यासों के समय चक्र के बीस वर्षों (सन् १९७१ ई. से १९९० ई.) की यात्रा में हिन्दी उपन्यासों में दर्शाए देश के बदलते हुए जीवन के यथार्थ को उसके पूरे विस्तार और वैविध्य में गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस अवधि में परिमाण और प्रकार दोनों दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास का अभूतपूर्व विकास हुआ है। शायद ही समकालीन यथार्थ का कोई ऐसा पक्ष हो, जो उपन्यास की संवेदनशील पकड से दूर गया हो। इन बीस वर्षों में गाँवों की वास्तविक जिन्दगी और उसमें आए बदलाव, स्त्री की परम्परागत दुख:भरी दास्तान, उसके रूपांतरण तथा सबलीकरण की प्रक्रिया, दलितों की नरक के समान जिन्दगी और उनके उठ खडें होने की सच्चाई, समाज के पिछडें वर्ग का विद्रोह, मध्य वर्ग का बहुरंगी यथार्थ आदि का वर्णन इसमें किया गया है। शिक्षा परिसर में आई विसंगतियों तथा राजनीति के क्षेत्र में आयी गिरावट तथा कला, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र की बदसूरत वास्तविकता आदि हिन्दी उपन्यासों में इस समय में अपने यथार्थ रूप में दिखाई देती है। इस समय के शुरू व अन्त के उपन्यासों के मध्य विद्रोह व आक्रोश की सच्ची भावना के दर्शन हुए हैं। आजादी के पश्चात् के उपन्यास ग्रामीण सन्दर्भों के साथ कस्बों, छोटे शहरों, नगरों और महानगरों के परिवेश पर भी आधारित होने लगे। महानगरों के मध्यमवर्गीय जीवन को लेकर उपन्यास लिखे जाने लगे, इसके साथ ही लेखकों, पत्रकारों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों, दफ्तरशाहों, उद्योगपतियों, व्यवसायियों, निम्न वर्ग के कर्मचारियों और झुग्गी-झोंपडी में रहने वालों के जीवन यथार्थ को इस समय के उपन्यासों में परिलक्षित किया है। इन उपन्यासों में आधुनिक उपभोक्तावादी युग में मानवीय सम्बन्धों की मृत्यु, सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, धन और सत्ता की दौड में मानवीय मूल्यों को बिल्कुल दरकिनार कर राक्षसी भूमिका में जीने वाले डॉक्टरों, उद्योगपतियों, राजनेताओं और पत्रकारों का चित्रण भी विद्रोही भावना में किया गया है।

मौजूदा समाज में, विशेषकर भारत के बडें शहरों में ऐसे अनेक मनुष्य नामधारी प्राणी है, जिनकी जिन्दगी आवारा कुत्तों या कीडों-मकोडों से बेहतर नहीं है। वे अनचाहे बच्चों के रूप में जन्म लेते हैं और लावारिस की तरह उनका पालन होता है तथा एक दिन भूख या बिमारी से ग्रसित होकर मर जाते हैं। ऐसे ही विद्रोही वातावरण का चित्रण भी इस समय के उपन्यासों में हुआ है। 'भीष्म साहनी' ने *'बसन्ती'* (१९८०) उपन्यास में दिल्ली शहर में लगातार बनने वाली कालोंनियों या विहारों के साथ-साथ बनने वाली झुग्गी झोंपडी वाली गन्दी बस्तियों के परिवेश तथा उसमें रहने वाले निम्नवर्गीय समाज का वर्णन किया है। उस झुग्गी झोंपडी में निम्नवर्ग समाज के एक-दूसरें से आपसी सम्बन्धों, आर्थिक समस्याओं और नैतिक मूल्यों के संकट का अंकन किया गया है। 'भीष्म साहनी' के अलावा 'मन्नू भंडारी', 'मृदुला गर्ग', 'नासिरा शर्मा', 'विष्णु प्रभाकर' आदि के उपन्यासों में दिल्ली के विद्रोही परिवेश को पूरी विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत किया है। 'मंजुल भगत' के उपन्यास *'लेडीज क्लब'* (१९७६) में महानगरों के अभिजात्यवर्गीय स्त्रियों के आत्मप्रदर्शन, झूठी जिन्दगी, कृत्रिम आवरण और उनके जीवन के अर्न्तविरोधों का अंकन किया गया है। 'शैलेश मटियानी' के उपन्यासों में बम्बई की अपराध और दुखभरी जिन्दगी, झूठे वैभव के नीचे पलते हुए विलास और व्याभिचार, स्त्री की घुटनभरी जिन्दगी, महानगरीय जीवन के अर्न्तविरोध, महानगरी में पलने वाला आवारा समाज, बम्बई की नसों में पल रहे अत्याचार और शोषण, बम्बईया चालों की कबूतरखाने जैसी जिन्दगी, देह व्यापार आदि का अंकन प्रामाणिक तथा प्रकृतिवादी शैली में किया गया है। 'मनोहर श्याम जोशी' के उपन्यासों में भी महानगरों में रहने वाले लोगों के रहन-सहन वहाँ के जीवन की विसंगतियों, अनिश्चितताओं, नैतिक मूल्यों, भागदौड भरा जीवन, रहस्यमयी गलियों आदि का अंकन किया है। मुम्बई के परिवेश की एक सच्चाई यह भी कहीं जा सकती है, कि वह बाहर से आने वाले प्रवासियों का शहर है। भारत के अलग-अलग भागों से जीविका की तलाश में लोग यहाँ आते हैं, जिनमें एक बहुत बडा भाग मध्यम व निम्न वर्ग का होता है। इस प्रवासी मध्य व निम्नवर्गीय समाज की घुटनभरी, संघर्षभरी, विवशता तथा टूटन का चित्रण 'जगदम्बाप्रसाद दीक्षित' के उपन्यास *'कटा हुआ आसमान'* (१९७१) में किया है। उपन्यासकारों ने मुम्बई के परिसर जीवन का चित्रण किया है। 'ममता कालिया', 'महीप सिंह', 'देवेश ठाकुर' आदि ने भी महानगर के शिक्षा जगत के वातावरण में व्याप्त शिक्षकों और उच्च-अधिकारियों की गुटबन्दी, भ्रष्टाचार, अध्यापकों को साजिश का नाम देकर निकलवाना, व्यवस्था के प्रति छात्र वर्ग का असन्तोष, पढाने वाले शिक्षकों की घुटन भरी जिंदगी आदि का प्रमाणिक चित्रण किया है।

'धर्मवीर भारती' तथा 'रामदरश मिश्र' के उपन्यासों में भी व्यवस्था के प्रति विद्रोह देखने को मिलता है। उपन्यासों में उत्तरप्रदेश की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा जीविका की तलाश में शहर आता हैं, इनमें मिलों व कारखानों में काम करने वाले मजदूर, होटलों में चौका बर्तन व चाय पकडाने वाले बच्चें, फुटपाथ पर चाय बेचने वाले दुकानदार, घरों में काम करने वाले नौकर, माली, चपरासी आदि सभी संघर्ष का वर्णन है। 'रामदरश मिश्र' ने उत्तर भारत की जिन्दगी की सारी भद्दगियाँ, सामाजिक अर्न्तविरोध, जातिवादी संकीर्णता, गरीबी और निरक्षरता से पनपी मानसिकता तथा पैसे के लालच से उत्पन्न हुई अमानवीयता तथा भ्रष्टाचार आदि का अंकन अपने उपन्यासों में किया है।

महानगरीय व नगरीय परिवेश के अलावा अनेक उपन्यासकारों, जिसमें 'जगदीशचन्द्र', 'विवेकी राय', 'देवेन्द्र सत्यार्थी', 'राही मासूम रजा', 'श्री लाल शुक्ल', 'भीष्म साहनी', 'मैत्रेयी पुष्पा' आदि ने ग्रामीण परिवेश को लेकर अपने उपन्यासों में विद्रोही मानसिकता का अंकन किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्र में भी काफी बदलाव आया है। इनसे पहले 'प्रेमचन्द' ने गरीब किसान व मजदूरों की जहालत भरी जिन्दगी का अंकन किया है। १९७० ई. के पश्चात् के उपन्यासकारों ने भी ग्रामीणों की दयनीय स्थिति जमींदारों और भूमिपतियों द्वारा उनके शोषण निर्धनता, निरक्षरता, अन्धविश्वासग्रस्तता, जातीय और पारिवारिक कलह, पुलिस के अत्याचार, स्त्रियों की दुर्दशा आदि का प्रामाणिक अंकन इन उपन्यासकारों द्वारा किया गया है। 'भैरवप्रसाद गुप्त' और 'नागार्जुन' ने जमींदारों और किसानों के संघर्ष का चित्रण वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर किया है। जमींदारो और भूमिपतियों के विरूद्ध किसानों और खेतिहार मजदूरों में पनप रहे आक्रोश तथा उसकी अभिव्यक्ति इस काल के सभी ग्रामाधारित उपन्यासों में हुई है। इसके साथ ही गाँवों को उनकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी इस समय के उपन्यासों में दिखाई देती है।

राजनीतिक क्षेत्र को लेकर भी आम जन का आक्रोश इस समय के उपन्यासों में परिलक्षित होता है। इस समय के उपन्यासकारों में 'मुदुला गर्ग', 'अमृतलाल नागर', 'गिरिराज किशोर', 'यशपाल', 'मन्नू भंडारी', 'श्री लाला शुक्ल', 'राजकृष्ण मिश्र' ने राजनीति को विषय बनाकर अपने उपन्यासों की रचना की हैं। इन उपन्यासों में पूँजीपतियों की सब कुछ हडप कर जाने की नीति, राजनीतिक नेताओं और पूँजीपतियों की मीलीभगत से होने वाली लूट, चुनावी भ्रष्टाचार, राजनीति में धनशक्ति और गुंडाशक्ति का बढता हुआ असर, बुद्धिजिवियों के चरित्र

का खोखलापन आदि पर आम जनता का आक्रोश एवं विद्रोह दिखाई पडता है। 'मन्नू भंडारी' ने *'महाभोज'* उपन्यास में शैतानो की शैतानियत, राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता और नैतिकता रूपी संडाध का अत्यन्न यथार्थ और सजीव चित्रण किया है। राजनीति में छल-प्रपंच, धोखाधडी, गुंडागर्दी, धन एवं बाहुबल का अत्यन्त बोलबाला हो गया था। समकालीन राजनीति के इस घिनौने चेहरे को 'मन्नू भंडारी' ने अपने उपन्यास में बेनकाब किया है। राजनीति के नेतागण ऊपर से तो सन्त की तरह दिखने वाले किन्तु अन्दर से शैतानी रूप धारण करने वाले होते हैं। इन सबका भंडाफोड 'श्रीलाल शुक्ल' ने किया है। 'राजेन्द्र यादव' ने तो अपने उपन्यास में राजनीतिज्ञों की उस चाल का चित्रण किया है, जो आज के समय में खूब फल-फूल रही है। ये बलिदान, त्याग, तपस्या, सेवा, सज्जनता आदि की रामरूपी चादर ओढकर जनता को ही लूट रहे हैं। पूँजीपतियों के रूप में मजदूरों और बेरोजगार युवकों का शोषण कर रहे हैं। नवयुवक कब तक उनका शोषण सहते, आखिर उन्होंने भी इस भ्रष्टाचार भरी व्यवस्था को बदलने का निर्णय ले लिया है। नवयुवकों ने इस व्यवस्था का विद्रोह करना अन्ततः शुरू कर दिया है। इसका चित्रण इस समय के उपन्यासों में देखने को मिला है।

दलित और साम्प्रदायिकता विद्रोह को लेकर भी 'शैलेश मटियानी', 'जगदीश चन्द्र', 'रांगेय राघव', 'शिवप्रसादसिंह', 'कमलेश्वर', 'भीष्म साहनी', 'राही मासूम रजा', 'मंजूर एहतेशाम' आदि अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। इन सभी उपन्यासकारों ने मात्र सहानुभूति ही नहीं, बल्कि तीव्र संवेदना के साथ दलित जीवन का चित्रण किया है। सवर्ण समाज द्वारा दलित समाज के उत्पीडन, उनके शोषण, दलित समाज की निर्धनता तथा अपमान भरी जिन्दगी तथा उसके विरूद्ध दलितों के उठ खडे होने का चित्रण किया गया है। साम्प्रदायिक तनाव तथा उससे सम्बन्धित हिंसा लूटपाट, पलायन तथा देश में होने वाले हिन्दू मुस्लिम दंगो का चित्रण 'द्रोणवीर कोहली', 'बदीउज्जमां', 'नासिरा शर्मा', 'शानी' आदि अनेक उपन्यासकारों ने किया है। साथ ही मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय, मुस्लिम समाज की हालत को विश्वसनीय अंकन के साथ-साथ भारतीय नागरिक के रूप में उनकी मुश्किलों और साम्प्रदायिक सोच के साथ उनके आक्रोश एवं टकरावों का चित्रण किया है।

अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं, कि जबसे उपन्यास साहित्य की उत्पत्ति हुई है, तभी से उपन्यासों मे विद्रोह एवं आक्रोश किसी-न-किसी रूप में हमारे सामने आते रहे हैं, फिर चाहे वह राजनीतिक आक्रोश हो या साम्प्रदायिक विद्रोह हो या नवयुवक आक्रोश या

सामाजिक आक्रोश हो। अतः इस शोध कार्य में हमने सन् १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य उपन्यासकारों के उपन्यासों को लेकर उनमें इसी विद्रोह एवं आक्रोश का अध्ययन किया है।